दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २४ अंक नं० १२

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

तुम्हारे पग-पग पर गुरुदेव, बह रही आतमरस की धार।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अप्रैल १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२८८) एक अंक २५ पैसा [चैत्र सं० २४९५

विज्ञप्ति

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनने एवं धार्मिक शिक्षण शिविर में अभ्यास करने के लिये अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन सोनगढ़ आते रहते हैं।

हिन्दी भाषी मुमुक्षुओं के लिये धर्मशाला बनायी गई थी, वह अब काफी छोटी पड़ने लगी है। इसलिये ट्रस्ट की वार्षिक मीटिंग में एक योजना बनायी गई है। जिसमें वर्तमान धर्मशाला पर एक मंजिल और बनाने का विचार है। जो महानुभाव ४०००) चार हजार रुपये दान देंगे, उनके नाम का एक कमरा बनवाकर उसमें दाता के नाम की तख्ती लगायी जायेगी। एक कमरे के लिये दो व्यक्ति मिलकर भी दान दे सकते हैं। तथा छोटी रकमें भी स्वीकार की जायेंगी और दाताओं के नाम बोर्ड पर लिखाये जायेंगे। योजना का प्रारम्भ हो चुका है। पहले कमरे के लिये श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी बम्बई (प्रमुख-श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल ट्रस्ट, सोनगढ़) ने ४०००) चार हजार रुपये की घोषणा की है। कमरे की मालिकी ट्रस्ट की होगी, परंतु दाताओं को या उनके सगे-संबंधियों को उतरने में प्राथमिकता दी जायेगी।

—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

अप्रैल : १९६९ ☆ चैत्र, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २४ वाँ ☆ अंक : १२

महावीर का उपदेश

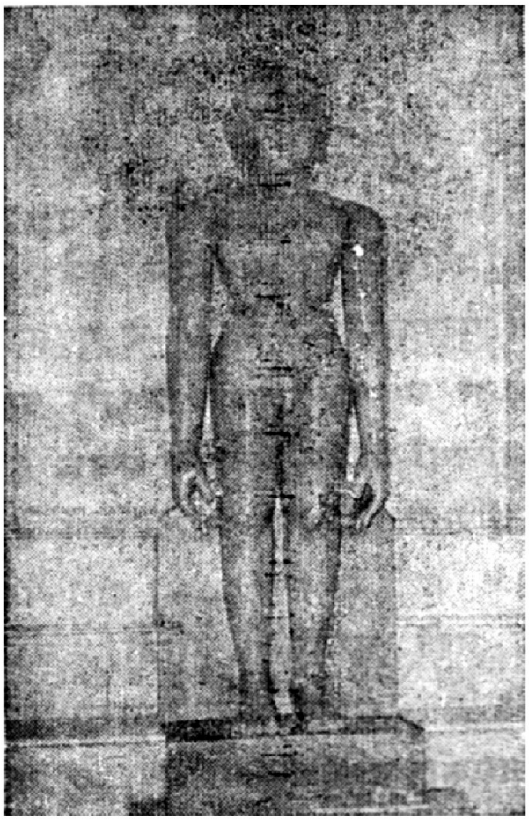

भगवान महावीर ने आत्मिक वीरता के मार्ग पर चलकर मोक्ष की साधना की और दिव्यध्वनि में जीवों को वही मार्ग बतलाया कि—'हे जीवो! अपने उपयोग को अंतर्मुख करकेअ ात्माक ेस् वसंवेदनप्रत्यक्षक रो! चैतन्य-स्वभावी आत्मा में राग-द्वेष के भाव उत्पन्न न हों और वीतरागभाव बना रहे, वही सच्ची अहिंसा एवं परमधर्म है। अपने आत्मा को पहिचान बिना अनादिकाल से रागभाव में धर्म मानकर तुमने आत्मा की हिंसा की है—वह अधर्म है... राग से पार अपने चैतन्यस्वभाव की प्रतीति करना वह धर्म है और वही मोक्ष का उपाय है।

भगवान ने ऐसे वीतरागमार्ग का उपदेश दिया है

पूज्य स्वामीजी करुणापूर्वक कहते हैं कि—भाई, अनंतकाल में ऐसा दुर्लभ मनुष्यजन्म प्राप्त हुआ, उसमें अपने सत् स्वरूप को लक्ष में ले... वीतरागमार्ग में कहे हुए ज्ञान का स्वरूप जान। अपना वीतरागी ज्ञानस्वभाव ही तुझे शरणभूत है, अन्य कोई नहीं। भगवान, अंतर में एकबार अपने आत्मा की ओर तो देख!

जगत के जड़ चेतन पदार्थ स्वतंत्र ज्ञेय हैं और आत्मा स्वतंत्र ज्ञाता है। पदार्थ दृश्य हैं, आत्मा दृष्टा है; उनके बीच कर्ता-कर्मपने का संबंध नहीं है। जिसप्रकार नदी में प्रवाह चला जाता हो और किनारे पर खड़ा आदमी स्थिर नेत्रों से उसे देखता हो, तो कहीं वह आदमी प्रवाह में बह नहीं जाता; उसीप्रकार परिणमन करते हुए जगत के पदार्थों को तटस्थरूप से जाननेवाला आत्मा कहीं पर में एकाकार नहीं हो जाता। जगत के पदार्थ स्वयं अपने-अपने कार्यों के कर्ता हैं, आत्मा उनका कर्ता नहीं। आत्मा यदि मकान, भोजन, शरीर आदि पुद्गलमय पदार्थों का उपयोग करे तो आत्मा भी पुद्गलमय हो जाये। वे पुद्गलमय पदार्थ तो आत्मा से भिन्न हैं और उस ओर की वृत्तियाँ भी ज्ञानभाव से पृथक् हैं। ज्ञान उन वृत्तियों का कर्ता-भोक्ता नहीं है। इस शरीर के किसी रजकण को या हाथ-पैरा को आत्मा नहीं चलाता, आत्मा उनका दृष्टा-साक्षी है। अपना ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा जिसकी दृष्टि में आ गया है, वह धर्मी जीव रागादि विभाव का कार्य ज्ञान को नहीं सौंपता, स्वयं उसका कर्ता नहीं होता। जिसप्रकार आँख को रेत उठाने का कार्य नहीं सौंपा जाता, उसीप्रकार ज्ञानचक्षु को जगत के या राग के कार्य नहीं सौंपे जाते। आत्मा ज्ञानमूर्ति चैतन्यपिण्ड है, उसके कार्य तो चैतन्यमय होते हैं। अज्ञानी भ्रम के कारण चैतन्य भगवान को भी जड़ का (शरीर का) कर्ता-भोक्ता मानते हैं परंतु उससे कहीं वे उसके

कर्ता-भोक्ता नहीं हो सकते; उन्हें तो विपरीत मान्यता का मिथ्यात्व लगता है। ऐसे जीवों को आचार्यदेव ने आत्मा का सत्य स्वभाव समझाया है... कि जिसे अनुभव लेते ही परमसुख तथा धर्म होता है।

गुण-गुणी अभेद हैं, इसलिये जिसप्रकार शुद्धज्ञान कर्म के बंध-मोक्ष को या उदय-निर्जरा को नहीं करता, उसीप्रकार शुद्धज्ञान परिणत जीव भी उसे नहीं करता। शुद्धउपादानरूप चैतन्यस्वभाव और उसकी प्रतीतिरूप शुद्ध ज्ञानपर्याय, उनमें कहीं भी पर का-राग का कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है। शुद्धज्ञान अर्थात् स्वोन्मुख ज्ञानपर्याय; अथवा अभेदरूप से उस ज्ञानपर्यायरूप परिणमित जीव, उसे राग का कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है; त्रैकालिक वस्तु में नहीं है और उसका अनुभव करनेवाली पर्याय में भी नहीं है।

यदि आत्मा पर को करे-भोगे तो दोनों पदार्थ एक हो जायें।

रागादि भी उपाधिभाव हैं, वह सहज शुद्धज्ञान का कार्य नहीं है।

ऐसे स्वभाव की शुद्धदृष्टिरूप से परिणमित जीव शुद्धउपादानरूप से रागादि को नहीं करता; वह अपने निर्मल भावों को करता है परंतु पर को नहीं करता। रागादि विभावों का कर्तृत्व-भोक्तृत्व अशुद्धउपादान में है, परंतु अंतर्दृष्टि से जहाँ शुद्ध उपादानरूप परिणमित हुआ, वहाँ उन अशुद्धभावों का कर्तृत्व नहीं रहता।

जगत में इस जीव के अतिरिक्त अन्य जीव तथा अजीव पदार्थ हैं, जीव की अवस्था में रागादि हैं—उन सबका अस्तित्व है अवश्य परंतु शुद्धस्वभाव की ओर अर्थात् सच्चे आत्मा की ओर उन्मुख जीव उन सबसे अपने को भिन्न अनुभव करता है। मैं चैतन्यसूर्य हूँ, ज्ञानप्रकाश का पुंज हूँ... ऐसी अनुभवदशारूप परिणमित जीव उन रागादि का कर्ता-भोक्ता नहीं होता। निर्मलपर्याय हुई, उसके साथ जीव अभेद है, इसलिये जिसप्रकार निर्मल ज्ञानपर्याय में परभाव का कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है; उसीप्रकार उस पर्यायरूप परिणमित जीव भी परभाव का कर्ता-भोक्ता नहीं है; शुद्धपर्याय में या अखंड द्रव्य में रागादि का कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है। ऐसे आत्मा को जानना ही सच्चे आत्मा की पहिचान है और वही सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है।

वीतरागी अहिंसा, वह परम धर्म है

अरे, तेरी चैतन्य जाति में तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद भरे हैं, सिद्धपरमात्मा समान गुण तुझमें विद्यमान हैं, भाई! शरीरादि तो जड़रूप होकर रहे हैं, वे तुझमें आये नहीं हैं और न

तुझरूप हुए हैं। जो अपने नहीं है, उनका में कर्ता हूँ... ऐसा अज्ञानी मानता है, वह मिथ्यात्व है, मिथ्यात्वरूपी महापाप अनंत दु:ख का कारण है। शुद्ध ज्ञातास्वभावी आत्मा को पर का या राग का कर्ता मानने से अपने ज्ञाताभाव की हिंसा होती है, चैतन्यप्राणों का घात होता है, वही हिंसा है।

ज्ञानी या अज्ञानी कोई जीव अपने से भिन्न जगत के किसी भी पदार्थ का कर्ता-भोक्ता नहीं हो सकता; अंतर सिर्फ इतना है कि अज्ञानी 'मैं करता हूँ, मैं भोगता हूँ' इसप्रकार स्व-पर की एकतारूप मिथ्या-मान्यता करता है और ज्ञानी स्व-पर की भिन्नतारूप यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानता है। यहाँ तो पर से भिन्नता के उपरांत यह बतलाना है कि शुद्धज्ञानदृष्टिवाले ज्ञानी को रागादि भावों का भी कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है। ऐसे शुद्धज्ञान की दृष्टि होने पर निर्मलपर्याय हुई उसका नाम धर्म है और वही परम अहिंसा है। भगवान ने ऐसी वीतरागी अहिंसा को परम धर्म कहा है।

प्रश्न—इसमें हमें करना क्या आया ?

उत्तर—भाई, इसमें करना यह है कि—जड़ से या राग से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को यथार्थरूप से जानकर उसका अनुभव करना... मोक्ष के लिये यही करने जैसा है। इससे विरुद्ध अन्य कोई कार्य चैतन्यप्रभु को सौंपना, सो हिंसा है, अधर्म है।

धर्मात्मा की धर्मक्रिया कैसी है ?

ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने से बाह्य में तो कुछ कर नहीं सकता। अशुद्धउपादानरूप से भी मात्र राग करता है, परंतु पर को तो अशुद्धउपादानरूप से भी नहीं करता; तथा आत्मप्रतीति की सच्ची भूमिका में तो धर्मात्मा रागादि को भी नहीं करते। अंतर की अनुभवदृष्टि में धर्मी अपने अतीन्द्रिय आनंद का ही उपभोग करते हैं। ऐसा आनंद का वेदन ही धर्मी की धर्मक्रिय है। जो ऐसी धर्मक्रिया करे, उसे ज्ञानी कहते हैं। धर्मी होने पर अपनी शांत ज्ञान-आनंदमय वीतराग दशा को ही वे करते हैं और उसी को भोगते हैं—तन्मयरूप से उसका वेदन करते हैं।

व्यवस्थित भाषा निकले, इच्छानुसार शरीर चले, तथापि वे कार्य आत्मा के नहीं हैं। जिस कार्य में जो हो, उसका वह कर्ता होता है। वाणी में आत्मा नहीं है परंतु पुद्गल के परमाणु हैं; वाणी के परमाणुओं की खान तो पुद्गलों में है, आत्मा की खान में वाणी के परमाणु नहीं हैं, इसलिए आत्मा उसका कर्ता नहीं है। उसीप्रकार शरीर के परमाणुओं में आत्मा नहीं है; आत्मा

उसका कर्ता नहीं है। धर्मदृष्टि में धर्मी जीव विभाव का भी कर्ता नहीं है। धर्मात्मा की सच्ची क्रिया अंतर्दृष्टि द्वारा जानी जाती है। 'थोड़ा लिखा बहुत जानना'—इसप्रकार वह संक्षिप्त सिद्धांत-नियम सर्वत्र लागू करके वस्तुस्वरूप को समझ लेना।

निजभाव का ग्रहण... परभाव का त्याग

शुद्धचैतन्यस्वयप आत्मा परभाव का कर्ता नहीं है। ज्ञान कहो या आत्मा कहो। गुण-गुणी को अभेद करके कहा है कि शुद्ध आत्मा रागादि को तथा कर्मों को जानता है परंतु उन्हें करता नहीं है। देखो, यह साधकदशा की बात है—जिसे अभी उसीप्रकार का व्यवहार है, तथापि शुद्धस्वभाव की दृष्टि में उसका कर्तृत्व छूट गया है—ऐसे साधक की यह बात है। आत्मा निश्चयरत्नत्रयरूप—मुनिदशारूप परिणमित हो, वहाँ शरीर से वस्त्रादि छूट ही जाते हैं और दिगम्बरदशा ही होती है, वहाँ आत्मा वस्त्र छूटने की क्रिया का ज्ञाता है परंतु उनका त्याग करनेवाला आत्मा नहीं है। आत्मा पर का ग्रहण या त्याग करनेवाला नहीं है; परद्रव्य तो तीनों काल आत्मा से पृथक् ही हैं। जो पृथक् ही हैं, उन्हें छोड़ना क्या? 'यह मेरे हैं' ऐसी जो अभिप्राय में झूठी पकड़ थी, उसके बदले पृथक् का पृथक् जाना; इसलिये 'यह मेरे हैं' ऐसा मिथ्या-अभिप्राय छूट गया, अपनेपन की मिथ्याबुद्धि का त्याग हुआ और पर से भिन्न ऐसे निजस्वरूप की प्रतीति हो गई। इसप्रकार धर्मी को सम्यक्त्वादि निजभाव का ग्रहण (उत्पाद) और मिथ्यात्वादि परभावों का त्याग (व्यय) हो गया। और जहाँ ऐसे ग्रहण-त्याग हुए, वहाँ दुःख का वेदन नहीं रहता; इसलिये वह धर्मी जीव दुःखादि परभाव का भोक्ता भी नहीं है। अनुकूल संयोग में हर्ष की और प्रतिकूल संयोग में शोक की जो वृत्तियाँ उठती हैं, उनका वेदन ज्ञान में नहीं है, ज्ञान का स्वरूप हर्ष-शोक से रहित है। ऐसी वृत्तियों को ज्ञानी जानभाव से जानते अवश्य हैं; परंतु मेरा ज्ञान ही हर्ष-शोकरूप हो गया, ऐसा अनुभव वे नहीं करते। हर्षादि वृत्तियों के समय भी उनसे रहित ऐसे अकारक-अवेदक ज्ञानरूप ही वे अपना अनुभव करते हैं।

ज्ञान में पाप नहीं है, तथा पुण्य भी नहीं है।

निर्मल ज्ञानपर्याय में राग का कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है तथा उस ज्ञानपर्याय में अभेद ऐसा पूर्ण शुद्ध आत्मा भी उसका अकर्ता-अभोक्ता है—ऐसा कहकर संपूर्ण ज्ञायकस्वभाव अकारक-अवेदक बतलाया। ऐसे आत्मा की प्रतीति हो, वह सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान है और वह धर्म का मूल है। लोग दया को धर्म का मूल कहते हैं, परंतु वह तो मात्र उपचार है;

दयादि शुभपरिणाम कहीं मोक्ष का कारण नहीं है; वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। यहाँ तो कहते हैं कि जिसप्रकार ज्ञान में हिंसा का अशुभभाव नहीं है, उसीप्रकार दया का शुभभाव भी ज्ञान में नहीं है। शुभ-अशुभभाव करने का कार्य ज्ञान को सौंपना, वह तो अज्ञान है, उसे ज्ञान की खबर नहीं है। जिसप्रकार पापभाव ज्ञान का स्वभाव नहीं है, उसीप्रकार शुभविकल्प भी शुद्धज्ञान का कार्य नहीं है। इसप्रकार शुद्धज्ञानरूप से परिणमित ज्ञानी रागादि को करता नहीं है, मात्र जानता ही है। 'जानता ही है' अर्थात् ज्ञानरूप ही परिणमित होता है, कहीं परोन्मुख होकर उसे जानने की बात नहीं है।

ऐसा मार्ग वीतराग का....

देखो, इस जाननेरूप ज्ञानक्रिया में मोक्षमार्ग का समावेश होता है। जहाँ अंतर्मुखदृष्टि द्वारा शुद्धस्वभाव के साथ पर्याय की एकता हुई, वहाँ द्रव्य में या पर्याय में कहीं व्यवहार के विकल्पों का कर्तृत्व नहीं रहता। ज्ञान में किसी विकल्प का कर्तृत्व नहीं है, उसका भोक्तृत्व नहीं है, उसका ग्रहण नहीं है, उसरूप परिणमन नहीं है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसका धर्मी जीव अनुभव करता है। भगवान ने ऐसे अनुभव को मोक्षमार्ग कहा है।

'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान;
समवसरण के मध्य में सीमंधर भगवान॥'

विदेहक्षेत्र में सीमंधर परमात्मा दिव्यध्वनि द्वारा ऐसे मार्ग का उपदेश दे रहे हैं और गणधरादि श्रोताजन भक्तिपूर्वक उसका साक्षात् श्रवण कर रहे हैं। वहाँ अनेक जीव ऐसा अनुभव कर-करके मोक्षमार्गरूप से परिणमित हो रहे हैं। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने उन सीमंधर भगवान की वाणी सुनकर इस भरतक्षेत्र में भी वही मोक्षमार्ग प्रसिद्ध किया है, और वर्तमान में भी ऐसा अनुभव हो सकता है। मोक्षमार्ग की रीति त्रिकाल एक ही है।

श्रीगुरु के उपदेश से जो जीव ऐसे मोक्षमार्गरूप परिणमित हुआ उसे, मोक्षमार्ग का उपदेश देनेवाले देव-गुरु-शास्त्र के प्रति अत्यंत विनय एवं बहुमान होता है; और तथापि वह विनयादि का शुभराग और अंतर का ज्ञान—दोनों के लक्षण भिन्न हैं—ऐसा ज्ञान भी उसी क्षण वर्तता है, वन्दनादि विनय के समय ही उसका ज्ञान अंतरस्वभाव में झुका हुआ है, राग की ओर झुका हुआ नहीं है। शिष्य को केवलज्ञान हो, और केवलज्ञान के पश्चात् भी छद्मस्थ गुरु के प्रति वंदनादि-विनय करे—ऐसा तो मार्ग नहीं है। वे तो वीतराग हुए, अब उन्हें वंदनादि का राग

कैसा ?—उल्टा गुरु को ऐसा लगता है कि—वाह ! धन्य है उन्हें... कि जिस कैवल्य पद को मैं साध रहा हूँ, उसे उन्होंने साध लिया ! वीतराग को तो विकल्प होता ही नहीं, परंतु यहाँ तो कते हैं कि—जिसे उसप्रकार का विकल्प आता है, ऐसे ज्ञानी को भी उस विकल्प का कर्तृत्व ज्ञान में नहीं है।—ऐसा ज्ञानस्वभाव है और ऐसा वीतरागमार्ग है। जिसप्रकार बाह्य के कण का आँख में समावेश नहीं होता, उसीप्रकार बाह्यवृत्तिरूप शुभाशुभराग, वह ज्ञानभाव में नहीं समाता। राग तो आकुलता की भट्ठी है और ज्ञानभाव तो परमशांतरस का समुद्र है, उस ज्ञानसमुद्र में रागरूप अग्नि का समावेश कैसे हो ? ज्ञान स्वयं राग में एकाकार हुए बिना उससे मुक्त रहकर उसे जानता है। ऐसा ज्ञानस्वभाव सम्यग्दर्शन में भासित हुआ है।

ज्ञान और राग भिन्न है

ज्ञान और राग भिन्न है—ऐसी भिन्नता कहो या अकर्तापन कहो; क्योंकि भिन्नता में कर्तापना नहीं होता। अपने से भिन्न हो, उसे आत्मा जानता अवश्य है परंतु करता नहीं है। जिसप्रकार केवलज्ञान में विकल्प नहीं है, उसीप्रकार साधक के श्रुतज्ञान में भी विकल्प नहीं है; ज्ञान से विकल्प भिन्न है, इसलिये ज्ञान में वह नहीं है। केवलज्ञान की भूमिका में तो विकल्प है ही नहीं, जबकि श्रुतज्ञान की भूमिका में देव-गुरु की भक्ति आदि विकल्प हैं परंतु ज्ञानी उन्हें नहीं करता, उन्हें ज्ञान से भिन्न जानता है। इसलिये ज्ञानी को तो विकल्प ज्ञान के ज्ञेयरूप हैं परंतु ज्ञान के कार्यरूप नहीं हैं। ज्ञानरूप परिणमित जीव रागादि कषायों को स्पर्श भी नहीं करता—स्पर्श किया तब कहा जाता है, जब उनके साथ एकता करे। जिसप्रकार आँख अग्नि को स्पर्श नहीं करती, (स्पर्श करे तो जल जाये) उसीप्रकार ज्ञानचक्षु शुभाशुभकषायरूप अग्नि को स्पर्श नहीं करता; यदि स्पर्श करे अर्थात् एकत्व करे तो वह अज्ञान हो जाये; इसलिये ज्ञान परभावों को स्पर्श नहीं करता; उन्हें करता नहीं है, वेदता नहीं है, उनमें तन्मय नहीं होता। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा ही सच्चा आत्मा है। राग को करे, ऐसा आत्मा वह 'सच्चा आत्मा' नहीं है, अर्थात् आत्मा का भूतार्थस्वभाव ऐसा नहीं है। शुभरागादि व्यवहारक्रिया करते-करते निश्चयसम्यक्त्वादि हो जायेंगे—ऐसा जो मानता है, उसने आत्मा को नहीं जाना परंतु राग को (अनात्मा को) ही आत्मा मानता है, वह बड़ा विपरीत दृष्टि (मिथ्यादृष्टि) है। सत्य ऐसे भूतार्थ आत्मा को जाने बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्दर्शन के बिना चारित्रदशा (मुनिदशा) नहीं होती और चारित्रदशा के बिना मोक्ष नहीं होता। चारित्र (मुनिदशा) के बिना तो सम्यग्दर्शन हो

सकता है, परंतु चारित्रदशा सम्यग्दर्शन के बिना कदापि नहीं हो सकती। इसलिये मोक्षार्थी को सच्चे आत्मा का निर्णय करके सम्यग्दर्शन करना चाहिये।

सत् ठगाया नहीं जायेगा

श्रीगुरु करुणापूर्वक कहते हैं कि— भाई! अनंतकाल में दुर्लभ यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ और सत्यधर्म को समझने का योग मिला; उसमें यदि अपने सत्स्वभाव को पहिचानकर उसकी शरण न ली तो चारगति में कहीं तुझे शरण नहीं मिलेगी। तू बाह्य से या राग से धर्म मनवा दे, उससे कदाचित् जगत के अज्ञानी जीव ठगाये जायेंगे और वे तुझे सन्मान भी देंगे, परंतु भगवान के मार्ग में यह बात नहीं चल सकती। राग से धर्म मानने में तेरा आत्मा ठगाया जायेगा, परंतु सत् नहीं ठगाया जा सकता; सत् तो जैसा है, वैसा ही रहेगा। तू दूसरा कुछ माने, उससे सत् नहीं बदल सकता। तू राग से धर्म माने; इसलिये राग तुझे शरण नहीं देगा। भाई, तुझे शरणभूत एवं सुखरूप तो तेरा अपना वीतरागस्वभाव है, अन्य कोई नहीं। भगवान! अपने अंतर में विराजमान ऐसे आत्मा को एकबार देख तो सही!

'शरीर तो क्षणभंगुर है'

'शरीर तो क्षणभंगुर है; संसार के संयोगी पदार्थों का वियोग अवश्य होता ही है। मुख्य एक ज्ञायकस्वभाव है, उसकी शरण में जाना चाहिये। पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का परम उपकार है, इसलिये सब समाधान हो सकते हैं।'

उपरोक्त उद्गार अपने आत्मधर्म के तंत्री (प्रधान संपादक) श्री जगजीवन बाऊचंद दोशी के हैं, जो उन्होंने अस्पताल में एक रोगी के निकट माघ महीने में प्रगट किये थे और फाल्गुन महीने में तो स्वयं ही क्षणभंगुर शरीर को छोड़कर चले गये!

जीव के पाँच भावों में कौन से भाव मोक्ष का कारण हैं ?

['ज्ञानचक्षु' (गुजराती पुस्तक) का एक प्रकरण]

आपैशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक तथा पारिणामिक—यह पाँच भाव हैं; उनमें औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक, यह चार भाव पर्यायरूप हैं और शुद्धपारिणामिकभाव द्रव्यरूप है। ऐसे परस्पर सापेक्ष द्रव्य-पर्यायस्वरूप आत्मवस्तु है; द्रव्य-पर्याय दोनों का जोड़, वह आत्मपदार्थ है।

उपशमादि चार भाव प्रगटरूप हैं, पर्यायरूप हैं; उनमें उपशम-क्षयोपशम-क्षायिक, यह तीन भाव निर्मल पर्यायरूप हैं तथा औदयिकभाव विकारी पर्यायरूप है। और जो पारिणामिकभाव है, वह द्रव्यरूप है, वह आत्मा का अहेतुक सहज स्वभाव है; सहज ज्ञान-आनंदादि अनंतस्वभाव पारिणामिकभाव से त्रिकाल है।—ऐसे स्वभाव को जाननेवाला ज्ञान, वह मोक्षमार्ग है।

औपशमिकभाव—अनादि का अज्ञानी जीव सर्वप्रथम जब अपने स्वभाव की प्रतीति करता है तब, चौथे गुणस्थान में उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है, और इस औपशमिकभाव से धर्म का प्रारंभ होता है। पश्चात् चारित्र में उपशमभाव उपशमश्रेणी के समय मुनि को होता है। उपशमभाव, वह निर्मलभाव है। उसमें मोह का वर्तमान उदय नहीं है, तथा उसका सर्वथा क्षय भी नहीं हो गया है, परंतु जिसप्रकार स्वच्छ जल में कीचड़ नीचे बैठ जाता है, उसीप्रकार सत्ता में कर्म विद्यमान है। जीव की ऐसी पर्याय को औपशमिकभाव कहते हैं।

क्षायोपशमिकभाव—इस भाव में किंचित् विकास तथा किंचित् आवरण है; ज्ञानादि का सामान्य क्षयोपशमभाव तो सर्व छद्मस्थ जीवों के अनादि से होता है; परंतु यहाँ मोक्ष के कारणरूप क्षयोपशमभाव बतलाना है, इसलिये सम्यग्दर्शनपूर्वक क्षयोपशमभाव लेना चाहिए।

क्षायिकभाव—आत्मा के गुण की संपूर्ण शुद्धदशा प्रगट हो और कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाये—ऐसी दशा, सो क्षायिकभाव है।

—यह तीन भाव निर्मलपर्यायरूप हैं; वे अनादि के नहीं होते परंतु आत्मा की प्रतीति सहित नवीन प्रगट होते हैं... और वे भाव मोक्ष का कारण हैं—ऐसा आगे समझायेंगे।

औदयिकभाव—जीव का विकारीभाव, जिसमें कर्म का उदय निमित्त होता है। अनादि से सर्व संसारी जीवों को औदयिकभाव होता है। मोक्षदशा होने पर उसका सर्वथा अभाव होता है। औदयिकभाव शुभ-अशुभ अनेकप्रकार के हैं, वे कोई भाव, मोक्ष का कारण नहीं होते। धर्मी जीव अपने ज्ञान का औदयिकभावों से भिन्न अनुभव करता है।

पारिणामिकभाव—आत्मा का त्रैकालिक सहज एकरूप स्वभाव। उसे 'परमभाव' कहा है; अन्य चार भाव क्षणिक हैं, इसलिये उन्हें 'परमभाव' नहीं कहा। पारिणामिकरूप परमस्वभाव प्रत्येक जीव में सदा विद्यमान है।

उपशमभाव अर्थात् मोक्षमार्ग का प्रारंभ

अरे, यह तो परम सत्य परम अमृत ऐसे आत्मस्वरूप का वर्णन है। तेरे भावों का यह वर्णन है। तेरे भावों में किसप्रकार से आवरण है और किसप्रकार से विकास है, उसकी यह बात है। पाँच भावों में उपशमभाव को सर्वप्रथम कहा; मोक्षमार्ग का प्रारम्भ उपशमभाव से होता है। अंतर में रागरहित शांत अकषायस्वरूप के वेदन द्वारा आत्मा को उदय से भिन्न जाना, तब उपशमभाव प्रगट हुआ और तब उदयभावों को यथावत् जाना। उपशमभाव के बिना उदय को भी जानेगा कौन? भेदज्ञान के बिना तो उदय को जानते हुए उस उदयभाव को ही अपना स्वभाव मान लेता था। अब उससे भिन्नता को जानने पर मोक्षमार्ग प्रारंभ हुआ। उपशमभावसहित हुआ जो सम्यग्ज्ञान, वही उदय को यथार्थ जानता है। तत्त्वार्थसूत्र में भी पाँच भाव के कथन में पहले उपशमभाव को लिया है।

जिसप्रकार सर्प को पकड़ने के लिये पहले उस पर पानी छिड़ककर उसे शांत करते हैं, अथवा जिसप्रकार कीचड़युक्त पानी में औषधि डालकर उसे स्वच्छ करते हैं और कीचड़ नीचे बैठ जाता है; उसीप्रकार अनादि से कषायों में वर्तता हुआ मिथ्या जीव प्रथम तो उन कषायों को शांत करता है, कषायों को तथा मिथ्यात्व शांत करके अर्थात् उपशमन करके औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रगट करता है। मिथ्यात्व में से सीधा क्षायिकसम्यक्त्व नहीं होता; पहले उपशम होता है और पश्चात क्षायोपशमिकपूर्वक क्षायिकसम्यक्त्व होता है। धर्म करनेवाले जीव को

प्रथम उपशमसम्यक्त्व ही होता है; चारों गतियों में वह हो सकता है; सातवें नरक में भी असंख्यात जीव वहाँ जाने के पश्चात् उपशमसम्यक्त्व प्रगट करनेवाले हैं। चार गतियों में कोई भी अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सर्वप्रथम निर्विकल्प आत्मअनुभव करें, वह उपशमसम्यक्त्व सहित होता है; चैतन्य को दृष्टि में लेकर उसने इतना पुरुषार्थ किया कि मोह को दबा दिया; उसे वर्तमान में दर्शनमोहकर्म प्रगट नहीं होता, तथा उसका सर्वथा क्षय भी नहीं हुआ है। मिथ्यात्व की अनुभूति, सो उपशमसम्यक्त्व है।

सत् वस्तु—उसमें पर्याय और द्रव्य

यह उपशमादि तीन भाव जीव को निर्मल पर्याय हैं। 'क्षायिकादिभाव जीव को नहीं हैं'—ऐसा कहा, उसका अर्थ कहीं यह नहीं है कि 'वे पर्यायें जीव में नहीं हैं' परंतु उसका अर्थ ऐसा है कि जीव में द्रव्यरूप से वह भाव नहीं है, परंतु पर्यायरूप से है। वस्तु में द्रव्य, वह पर्याय नहीं है, पर्याय, वह द्रव्य नहीं है। पाँच भावों में से चार तो पर्यायरूप हैं और एक द्रव्यरूप है।

पाँच भावों में से औदयिकभाव मोक्ष का कारण नहीं है; औपशमिकादि तीन भाव मोक्ष का कारण हैं और पाँचवाँ पारिणामिकभाव, वह द्रव्यरूप है, वह बंध-मोक्ष का कारण नहीं है। चार भाव क्रियारूप अर्थात् उत्पाद-व्ययरूप हैं और पाँचवाँ भाव निष्क्रिय है अर्थात् एकरूप ध्रुव है। द्रव्य-पर्याय दोनों मिलकर वस्तु है। द्रव्य, सो निश्चय; पर्याय, सो व्यवहार—दोनों मिलकर प्रमाणवस्तु सत्.... उनमें द्रव्य, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय और पर्याय, वह पर्यायार्थिकनय का विषय—परंतु वे दोनों पर से तो भिन्न ही हैं। ऐसी सत् वस्तु, उसके भावों का यह वर्णन है।

स्वामीजी करुणापूर्वक कहते हैं कि—आत्मस्वरूप को समझो।

स्वामीजी अत्यंत करुणापूर्वक कहते हैं कि—अरे भाई! वाद-विवाद छोड़कर ऐसी आत्मवस्तु के विचार में और मंथन में रहेगा तो कोई अपूर्व वस्तु हाथ में आयेगी। भाई, जीवन का एक-एक समय महा मूल्यवान है! अरे, मनुष्यभव का ऐसा अवसर व्यर्थ चला गया तो उसका क्या मूल्य? ....इस मनुष्यभव के एक-एक क्षण में भव के अभाव का कार्य करना है। यह मनुष्य जन्म कहीं भव बढ़ाने के लिये नहीं है परन्तु भव का अभाव करने के लिये है! यदि

मनुष्यभव पाकर वह कार्य नहीं किया तो दूसरे भव में और इस भव में अंतर ही क्या ?... जिसप्रकार अनंत भव बीत गये, उसीप्रकार यह भव भी बीत गया तो आत्मा का हित कब करेगा ?—इसलिये सावधान होकर अपने आत्मा का स्वरूप समझ।

आत्मा पर से तो अत्यंत पृथक् है, इसलिये पर के साथ कोलाहल की बात तो दूर रही; यहाँ तो कहते हैं कि अपने में एक पर्याय का भेद करके उसके लक्ष से अटक जाये तो पूर्ण वस्तु लक्ष में नहीं आयेगी। भाई, तेरी सत् वस्तु है, वह तेरे द्रव्य-पर्यायरूप है, पर के साथ तुझे कोई संबंध नहीं है। तुझमें जो द्रव्य और पर्याय सत् हैं, उनकी यह बात है, इसे तू लक्ष में तो ले... अपने घर की वस्तु को देख तो सही !

(सवैया)

काल अनादितैं फिरत फिरत जिय, अब यह नरभव उत्तम पायो।
समुझि समुझि पंडित नर प्रानी, तेरे कर चिंतामणि आयो;
घटकी आँखैं खोलि जौहरी, रतन जीव जिनदेव बतायो।
तिल में तेल वास फूलनि में यों घट में घटनायक गायो॥

(—भैया भगवतीदासजी)

विविध वचनामृत

साध्य के साधन की प्राप्ति कहाँ से होगी ?

साध्य का साधन कैसा होता है ? और वह कहाँ से प्राप्त होगा ? उसका अंतरमंथन पूज्य स्वामीजी ने बिल्कुल सुगम, तथापि सचोट शैली में समझाया है। उसका सार यहाँ दे रहे हैं।

❖ आत्मा पूर्ण आनंद को चाहता है... इसलिये वह साध्य है।

❖ उस आनंद का साधन भी आनंदरूप ही होता है, आनंद का साधन दु:खरूप नहीं होता है।

❖ अब पूर्ण आनंद के साधनरूप जो आंशिक आनंद है, वह कहाँ से आयेगा ? वर्तमान दु:खदशा में से आनंददशा नहीं आती है; बाह्य में से भी नहीं आती।

❖ तो कहाँ से आती है ? आत्मस्वभाव आनंदशक्ति से परिपूर्ण है, ऐसे स्वभाव को स्वीकार करके उसमें एकतारूप परिणमित होने पर पर्याय भी उसी जैसी आनंदरूप होने लगती है।

❖ राग में एकता से या बाह्य में देखने से आनंददशा प्रगट नहीं होती, परंतु अंतरंग में दृष्टि डालकर आनंदभाव में एकता से ही आनंददशा होती है।

❖ इसप्रकार निजस्वभाव के सेवन से ही साधकदशा होती है, और उसी के सेवन से साध्यदशा प्रगट होती है। इसलिये साध्य-साधक दोनों भाव में एक ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा का ही सेवन है।

❖ साध्य और साधक ऐसे दोनों भावों में एक ज्ञान ही सेवन करने योग्य है; एक ज्ञान का ही, साधक और साध्य ऐसी दो पर्यायरूप परिणमन है, साध्य और साधक दोनों एक ज्ञानरूप ही हैं, इसप्रकार साधक और साध्य दोनों भाव एक जाति के हैं। इसलिए जिसप्रकार साध्य रागरहित है, उसीप्रकार साधकभाव भी रागरहित ही है।

शुभराग साधक होकर ज्ञान को साधे, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि दोनों की जाति भिन्न है।

इसलिए हे जीव! शुद्ध साध्य की जाति का साधकभाव प्रगट करके तू अपने आत्मा की साधना कर, स्वभाव से भिन्न अन्य साधन की खोज मत कर।

* * *

देहली के एक मुमुक्षु भाई के प्रश्नों का उत्तर—

❖ ध्यानच्युत अवस्था में भी धर्मी को जितनी वीतरागता है, उतना ही सुख और धर्म है। जितना राग है, उतना बंधन और दुःख है।—यह जैनसिद्धांत का नियम है।

मुनिराज को उपदेश आहार-विहारादि क्रियाओं के समय भी बीच-बीच में बारंबार ध्यानदशा (सातवाँ गुणस्थान) होता रहता है। मुनि की अंतरदशा का अनुमान इस पर से हो सकेगा कि उनके चौबीस घंटों में से तीसरा भाग यानी आठ घंटे नियम से निर्विकल्प ध्यान में ही व्यतीत होते हैं। कैसी महान है मुनिदशा!—मानों छोटे से केवली हों (षट्खंडागम में यह बात प्रसिद्ध है) जीव को मोहरहित जो उदय होता है, वह बन्ध का कारण किंचित् नहीं होता, उसकी निर्जरा ही हो जाती है, इसलिये बंध का कारण उदय नहीं है, परंतु मोह बंध का कारण है।

❖ यह काल निकृष्ट है, इसलिये उत्कृष्ट अध्यात्म के उपदेश की मुख्यता करना योग्य नहीं?

उत्तरः—यह काल साक्षात् मोक्ष होने की अपेक्षा से निकृष्ट है (अर्थात् यह काल यहाँ के जीवों को साक्षात् मोक्ष का कारण भले ही नहीं है) परंतु आत्म-अनुभवनादि द्वारा सम्यक्त्वादि होने का इसकाल में निषेध नहीं है, वह तो इसकाल भी हो सकता है; इसलिये आत्मानुभवनादि के हेतु द्रव्यानुयोग का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

दोपहर में सूर्य पूर्ण तेजसहित प्रकाशमान हो, वहाँ नीचे अनेक बादल आते-जाते हैं। नीचे से देखनेवालों को ऐसा लगता है कि बादलों ने सूर्य को ढँक लिया है। परंतु ऐसा नहीं; बादलों से ऊपर सूर्य तो ज्यों का त्यों प्रकाशमान है; बादलों के आने-जाने से कहीं सूर्य का प्रकाशस्वभाव नहीं ढँक जाता। उसीप्रकार मैं तो ज्ञानसूर्य हूँ; सुख-दुःख अथवा संयोग-वियोगरूपी बादल आयें और जायें, परंतु उससे क्या मेरा ज्ञानसूर्य आच्छादित हो सकता है?.... नहीं। यह बादल तो क्षण में चले जायेंगे और मैं ज्ञानसूर्य अपने चैतन्यप्रकाश से चमकता ही रहूँगा। सुख-दुःख के बादलों द्वारा मेरी चैतन्यता कभी आच्छादित नहीं होगी।

प्रश्न—सिद्धों का साधर्मी कैसे हुआ जाता है?

उत्तर—सिद्ध समान अपने आत्मा का स्वसंवेदन करने से सिद्धों का साधर्मी हुआ जा सकता है।

प्रश्न—पर के साथ एकत्वबुद्धि का मोह कैसे दूर हो ?

उत्तर—चैतन्यस्वरूप आत्मा को लक्ष में लेकर अनुभव करते ही पर के साथ की एकत्वबुद्धि का मोह छूट जाता है।

प्रश्न—आप व्यवहार को मानते हैं ?

उत्तर—हाँ।

प्रश्न—आप वयवहार के आश्रय से धर्म मानते हैं ?

उत्तर—नहीं।

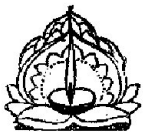

आत्म-अनुभव होने पर सम्यक्त्वी जीव केवलज्ञानी जितनी ही नि:शंकता से जानता है कि—मैं आत्मा का आराधक हुआ और भगवान के मार्ग में आ गया... अब मुझे भवभ्रमण नहीं हो सकता।—इसप्रकार उसके अंतर से स्वानुभव की ध्वनि उठती है।

ज्ञानस्वभाव ही ध्रुव और शरणभूत है

(श्री समयसार गाथा ७४ के प्रवचन से)

चैतन्यस्वरूप आत्मा शांत-अनाकुल है। उसमें प्रवेश करने पर अशांति दूर हो जाती है और शांति का वेदन होता है। वह किसप्रकार होता है?—सो कहते हैं।

आत्मा का ज्ञानस्वभाव ध्रुव निरंतर रहनेवाला है, असंयोगी है; और शरीरादि का संयोग अध्रुव है, रागादि परभाव भी संयोगाश्रित होने से अध्रुवभाव हैं, वे आत्मा के स्वभाव के साथ एकरूप होकर नहीं रहते, इसलिये वे आत्मा को शरणरूप नहीं हैं, अशरण और अध्रुव हैं। शरण और ध्रुव तो ज्ञानमय अपना स्वभाव है।

इसप्रकार दोनों को जानकर, अध्रुव ऐसे आस्रवभावों से दूर होकर (अर्थात् उनमें एकत्वबुद्धि छोड़कर) और अंतर के ध्रुवस्वभाव में एकाग्र होकर अभेद होता है; इसप्रकार ज्ञान होने पर ही आत्मा रागादि परभावों से छूट जाता है। इसलिये ज्ञान की उत्पत्ति और राग की निवृत्ति-दोनों का एक ही समय है।

सर्वज्ञ परमात्मा ने प्रत्येक आत्मा को आनंदमय देखा है; जो रागादिभाव हैं, वह तो चैतन्यरत्न पर दाग है—कलंक है; परंतु यह दाग बाह्य है, मूल चैतन्य हीरा ऐसा नहीं है। ऐसे चैतन्यस्वरूप को दृष्टि में लेकर उसमें एकाग्र होने पर रागादि मलिनता छूट जाती है, और ज्ञानरत्न में निर्मल किरणें प्रगट होती हैं—इसको भगवान धर्म कहते हैं।

चैतन्यभ गवानअ ात्माय दिर ागक श ारणल ेनेज ायेत ेउ सकाइ ाानन ाशह ेाता है—अज्ञान होता है। राग स्वयं ज्ञान नहीं, वह तो ज्ञान से विरुद्ध है, अस्थिर है, उस राग को कहीं ऐसी खबर नहीं है कि मैं राग हूँ—वह तो ज्ञानरहित अचेतनभाव है, उससे भिन्न ज्ञान ही उसे जानता है कि 'यह राग' है। मैं राग नहीं, मैं तो राग को जाननेवाला ज्ञान हूँ;—ऐसा जो ज्ञान है वह आत्मा है; और ऐसे ज्ञान में प्रवर्तता हुआ आत्मा, वह रागादिभाव से निवृत्त ही है—मुक्त ही है, आत्मा की ओर झुका हुआ ज्ञान रागरहित है।

भाई! क्या आत्मा पुण्य-पापस्वरूप है! नहीं; वह तो चेतनस्वरूप है! जिसप्रकार बड़े

वृक्ष के थोड़े भाग में लाख लगी हो, वहाँ संपूर्ण वृक्ष कहीं लाखरूप नहीं हो जाता है; उसीप्रकार संपूर्ण अनंतगुण से भरा हुआ चैतन्य आत्मा, उसके साथ क्षणिक रागादिभाव बंधे हुए हैं परंतु संपूर्ण चैतन्यवृक्ष कहीं रागरूप हो जाता नहीं है—इसप्रकार अंतर में आत्मा का स्वभाव और रागादि इन दोनों के बीच भिन्नता को जाने तो उस समय ही जीव का ज्ञान रागादि से पीछे हटकर स्वभाव की ओर सन्मुख होता है। उस ज्ञान में स्वभाव की अस्तिरूप और रागादि की नास्तिरूप एक साथ परिणमन है। ऐसा परिणमन हो, तब जीव को सच्चा ज्ञान हुआ कहा जाता है, और तब ही वह मोक्षमार्ग में आया अर्थात् भगवान के मार्ग में आया है।

मरने पर 'शरीर छूट जाता है' ऐसा लोग कहते हैं; शरीर वह कहीं आत्मा नहीं था, वह भिन्न था और भिन्न हुआ; परंतु क्या ज्ञान कहीं भिन्न हुआ ?—ज्ञान कहीं आत्मा से भिन्न होता है ? नहीं, क्योंकि ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव है। इसीप्रकार राग का अभाव होता है क्योंकि वह आत्मा का अविरुद्ध स्वभाव नहीं है; वह तो विरुद्धभाव है। आत्मा के निज भाव में उसका प्रवेश नहीं है, इसलिये वह निकल जाता है।

❊ ज्ञान, वह आत्मा का अविरुद्ध स्वभाव है।

❊ राग, वह आत्मा का विरुद्ध स्वभाव है।

☆ इसप्रकार ज्ञान में और राग में भिन्नता है।

इसप्रकार दोनों को भिन्न जानकर ज्ञान ने ज्ञानरूप परिणमन किया और रागरूप परिणमन नहीं किया—यही सच्चा भेदज्ञान है, यही आस्रव से निवृत्ति, यही संवर है, यही मोक्ष का उपाय है।

अंतर्दृष्टि करने से अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है, वह आनंद अपने स्वभाव में से आता है, कहीं अन्यत्र से नहीं आता। पर विषय आत्मा के आनंद में अकिंचित्कर हैं।

तुम्हारे पग-पग पर गुरुदेव, बह रही आतमरस की धार

(२)

गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में आनंदपूर्वक भव्य पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समाप्त हुआ और फाल्गुन शुक्ला ६ के प्रातःकाल आदिनाथ आदि भगवंतों का स्तवन करके तथा अर्घ्य चढ़ाकर पूज्य स्वामीजी ने दहेगाम (उत्तर गुजरात) की ओर प्रस्थान किया। एक दिन दहेगाम में रुककर फाल्गुन शुक्ला सप्तमी के दिन सवेरे रखियाल पधारे। आज रखियाल के जिनमंदिर की प्रतिष्ठा का दिन था; गुरुदेव के शुभहस्त से जिनेन्द्र भगवान को वेदी में विराजमान किया गया और मंदिर पर नूतन ध्वजारोहण हुआ।

फाल्गुन शुक्ला ८-९ (तारीख २४-२५-२-६९) दो दिन के लिये पूज्य स्वामीजी तलोद पधारे। फाल्गुन शुक्ला १० को तलोद से बामणवाडा होकर मुनाई ग्राम गये... मुनाई जाते समय बीच में करीब चार मील रास्ता खूब ऊबड़खाबड़ था, परंतु अपने ग्राम में महापुरुष का पदार्पण कराने की भावना से ग्रामवासियों ने उत्साह पूर्वक सारा मार्ग समतल बना दिया था... उस मार्ग से पूज्य गुरुदेव ने मुनाई ग्राम में प्रवेश किया। सारा गाँव गुरुदेव का स्वागत करने के लिये उमड़ पड़ा था। यहाँ का जिनमंदिर सुंदर एवं प्राचीन है। पार्श्वनाथ आदि भगवंतों की सुंदर प्रतिमाएँ विराजमान हैं। मंदिर के निकट ही नूतन स्वाध्याय मंदिर का निर्माण हुआ है जिसका उद्घाटन पूज्य स्वामीजी की छत्रछाया में श्री बाबूभाई फतेपुरवालों के हाथ से हुआ। प्रवचन में ग्रामवासियों के अलावा आसपास के ग्रामों से हजारों लोग ओय थे और विशाल मेला जैसा वातावरण हो गया था। बालिकाओं द्वारा स्वागत-गीत के पश्चात् ग्रामजनों की ओर से पूज्य स्वामीजी को अभिनंदन-पत्र अर्पण किया गया था। भाई श्री मणिलालजी ने हार्दिक उल्लास व्यक्त करते हुए पूज्य स्वामीजी का स्वागत किया था। सायंकाल मुनाई से भीलोडा आ गये थे।

भीलोडा एक पुराना नगर है। प्राचीन काल में इस नगर की समृद्धि कैसी होगी! उसका अनुमान वहाँ के एक प्राचीन जिनमंदिर को देखने से हो सकता है। उस मंदिर का जीर्णोद्धार

४०० वर्ष पहले हुआ है, और वह ८००-९०० वर्ष प्राचीन होने का अनुमान है। प्राचीन प्रतिमाएँअ तिम नोज्ञहैंअ ौरम ंदिरके च ारोंअ ोरब ावना जतनीव ेदियोंम ेंभ ीभ गवान विराजमान हैं; मंदिर के प्रांगण में लगभग सौ फुट ऊँचा कलामय धर्मस्तम्भ है, जिसके भीतरी भाग में ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ हैं। जिनमंदिर में भरत-बाहुबलि की प्राचीन मूर्तियाँ तथा बीस विहरमान तीर्थंकरों के चरण हैं। कुछ ही दिनों पहले मंदिर के भोंयरे में से करीब चालीस जिनप्रतिमाएँ नकलीथ ींइ सभ व्या जनालयक ोद ेखकरस बअ ानंदितह ुएथ े ाप ूज्य स्वामीजी के साथ जिनमंदिर में भगवान के दर्शन करके पूज्य बेनश्री-बेन ने भावपूर्ण भक्ति करायी थी... सबको तीर्थयात्रा जैसा आनंद आया था। रात्रि को भीलोडा में रुककर फाल्गुन शुक्ला ११ के प्रात:काल रणासण की ओर प्रस्थान किया।

** ** **

रणासण (गुजरात) में पंच कल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव, गुजरात में जैनशासन का जय-जयकार

फाल्गुन शुक्ला ११ का मंगल दिवस... प्रात:काल जिनेन्द्र भगवान को प्रतिष्ठा-मंडप में विराजमान करके शांतिजाप अर्थात् विधि का प्रारंभ हुआ और पूज्य स्वामीजी के पधारते ही उनका भव्य स्वागत हुआ। स्वागत-यात्रा में आगे चार हाथियों पर धर्मध्वज लहरा रहे थे और उनके पीछे एक सुंदर रथ चल रहा था। इंदौर के पंडित श्री बंसीधरजी न्यायालंकार, वाराणसी के पंडित श्री कैलाशचंदजी सिद्धांत शास्त्री तथा प्रतिष्ठाचार्य पंडित श्री नाथूलालजी शास्त्री आदि विद्वान भी इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आ पहुँचे थे। पूज्य स्वामीजी के मंगल-प्रवचन के पश्चात् आदिनाथनगर (प्रतिष्ठा-मंडप) में जैन ध्वजारोपण विधि हुई थी।

इस मंगल-धर्मोत्सव के कारण रणासण ग्राम मानों बदल गया था... उसक नवरचना हो गयी थी। नये रास्ते, प्रकाश और पानी की सुंदर व्यवस्था, विशाल प्रतिष्ठा-मंडप की सजावट आदि के कारण ऐसा लगता था मानों कोई सुंदर नगर हो। चारों ओर धरसेन-द्वार, कुन्दकुन्द-द्वार, टोडरमल-द्वार आदि से शोभायमान तंबुओं की बस्ती थी; भगवान आदिनाथ के जन्म से पूर्व रची गयी उस आदिनाथनगरी के प्रांगण में चार हाथी झूल रहे थे और मंगल-वाद्यों के स्वर वातावरण में गूँज रहे थे। रथों जैसी सुंदर बैलगाड़ियाँ चारों ओर दिखायी देती

थीं। और जिनके कारण यह सब शोभा थी वे पूज्य स्वामीजी प्रातः तथा दोपहर को अपनी वाणी द्वारा मानों अमृतवर्षा करते थे।

फाल्गुन शुक्ला १२ के प्रातःकाल नान्दिविधान एवं इन्द्रप्रतिष्ठा हुई, जिसमें १६ इन्द्र थे। सौधर्म इन्द्र के रूप में रणासण के गाँधी छोटालाल वीरचंद तथा ईशान इन्द्र के रूप में शाह सोमचंद पूनमचंद थे; माता-पिता बनने का सौभाग्य सोनासण के सेठ श्री मीठालाल जगजीवनदास तथा उनकी धर्मपत्नी सौ. चुनीबेन को प्राप्त हुआ था। पूज्य स्वामीजी का मंगल आशीर्वाद लेकर इंद्रों का जुलूस जिनेन्द्र भगवान की पूजा के लिये चला... नगर के लोग आश्चर्यसहित इन्द्रों की स्वारी देख रहे थे। इंद्रों ने आकर चौंसठ ऋद्धिधारी मुनिवरों की पूजा की।

रणासण (तलोद से पंद्रह मील दूर) बिल्कुल पुराना ग्राम है; वहाँ की कुल बस्ती दो हजार जितनी है, जिसमें जैनों के कुल दसेक घर हैं; उनमें पाँच-छह घर दिगम्बर जैनों के हैं। यहाँ एक प्राचीन दिगम्बर मंदिर था परंतु अब वह जीर्ण हो जाने से उसके बदले नूतन जिनमंदिर का निर्माण हुआ है। मात्र पाँच घर दिगम्बर जैनसमाज के होने पर भी लगभग डेढ़ लाख रुपया लगाकर रत्नत्रयसमान तीन शिखरों से सुशोभित भव्य जिनमंदिर बनवाया और पंच

कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव कराया—यह पूज्य स्वामीजी द्वारा होनेवाली जैनशासन की प्रभावना का ही प्रताप है। इतने छोटे ग्राम में इतने महान कार्य की सफलता का श्रेय गुजरात के साधर्मियों तथा अध्यात्म प्रेमी श्री बाबूभाई फतेपुरवालों को है।

फाल्गुन शुक्ला १३ के प्रात:काल प्रवचन के पश्चात् यागमंडल विधान और सायंकाल जलयात्रा हुई थी। रात्रि को भगवान आदिनाथ के गर्भकल्याणक की पूर्व तैयारी के दृश्य दिखलाये गये थे। प्रारंभ में कुमारिका देवियों ने आदिनाथ भगवान का मंगलाचरण किया और पश्चात् सर्वार्थसिद्धि विमान में ऋषभदेव भगवान का जीव विराजमान है, वह दृश्य बतलाया गया था। तत्पश्चात् सौधर्म इन्द्र की सभा, अयोध्यानगरी की रचना, देवियों तथा देवों द्वारा माता-पिता की सेवा, मरुदेवी माता को सोलह स्वप्न आदि दृश्य हुए थे।

फाल्गुन शुक्ला १३ (द्वितीया) के प्रात:काल माताजी के १६ स्वप्नों के उत्तम-फलरूप तीर्थंकर भगवान श्री ऋषभदेव के जन्म की पूर्व सूचना, आठ कुमारी देवियों द्वारा माताजी की सेवा-स्तुति तथा माताजी के साथ तत्त्वचर्चा आदि दृश्य हुए थे। दोपहर को जिनमंदिर-वेदी-कलश-ध्वजशुद्धि हुई थी। रात्रि को भरत-बाहुबली का धार्मिक नाटक फतेपुर पाठशाला की छोटी-छोटी बालिाओं ने प्रदर्शित किया था।

एक ओर भगवान आदिनाथ के कल्याण हो रहे थे, दूसरी ओर प्रवचन में भी पूज्य स्वामीजी 'आदिनाथ स्तोत्र' में से भगवान के कल्याणकों का अद्‌भुत आध्यात्मिक वर्णन अपनी भावभीनी शैली से कर रहे थे। भगवान जब सर्वार्थसिद्धि विमान छोड़कर अयोध्यानगरी में जन्म लेते हैं, तब मानों सर्वार्थसिद्धि की शोभा भी भगवान के साथ ही अयोध्या में आ गयी; इसलिये जो सर्वार्थसिद्धि विमान भगवान के कारण शोभायमान था, उसकी शोभा अब कम हो गयी और अयोध्या की शोभा बढ़ गयी!—ऐसा अलंकार करके आचार्यदेव कहते हैं कि पुण्य की शोभा नहीं परंतु धर्म की शोभा है। प्रभो! आपके बिना सर्वार्थसिद्धि भी सूना-सूना लगता है और आपके पधारने से यह पृथ्वी 'सनाथ' होकर नवांकुरों द्वारा पुलकित हो गई... अर्थात् आपके निमित्त से आत्मा में धर्म के अंकुर फूट पड़े... ऐसे अनेक प्रकार से आत्मा के साथ सन्धिसहित आदिनाथ भगवान की स्तुति होती थी...

फाल्गुन शुक्ला १४ के प्रात:काल भगवान आदिनाथ के जन्म से अयोध्यानगरी पावनतीर्थ बन गई.. मरुदेवी माता जगत की माता बनीं... इन्द्रों के आसन डोल उठे... घंटनाद

गूँज उठे... अनेक मंगलसूचक चिह्नों द्वारा तीर्थंकर का जन्मोत्सव जानकर इन्द्र-इन्द्राणी ऐरावत सहित आ पहुँचे... इधर अयोध्यानगरी में नाभिराजा के दरबार में ऋषभ अवतार की मंगल-बधाईयाँ बजने लगीं... चारों ओर आनंद छा गया।

इन्द्र-इन्द्राणी भगवान को लेकर मेरु पर्वत पर पहुँचे और जन्माभिषेक किया। जन्माभिषेक की विशाल रथयात्रा का दृश्य अद्भुत था! जन्माभिषेक के पश्चात् इन्द्र-इन्द्राणी भगवान को माता-पिता को सौंपते हैं और इन्द्र ताण्डवनृत्य करता है। आज सारे नगर का वातावरण आनंद से भर गया था।

दोपहर को प्रवचन के बाद भगवान को पालना झुलाने की विधि हुई। मरुदेवी माता के अलावा इन्द्राणी भी ऋषभकुंवर को झुलाती थीं। बालिकाओं ने रास द्वारा अच्छी भक्ति की थी। रात्रि को ऋषभदेव के राज्याभिषेक का तथा राजदरबार का सुंदर दृश्य दिखाया गया था। सैकड़ों राजा भगवान के समक्ष अपनी भेंट अर्पित कर रहे थे। कल्पवृक्ष का दृश्य अत्यंत दर्शनीय था।

फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के दिन-भगवान ऋषभदेव राजसभा में विराजमान हैं और इंद्रों द्वारा नाटक प्रदर्शित किया जा रहा है। उसमें नीलांजना नाम की देवी नृत्य करते-करते आयु पूर्ण होने से अदृश्य हो जाती है और संसार की ऐसी क्षणभंगुरता देखकर भगवान जातिस्मरण पूर्वक वैराग्य को प्राप्त होते हैं। भरत तथा बाहुबली को राज्य का भार सौंपकर भगवान दीक्षा की तैयारी करते हैं... उसी समय लोकांतिक देव आकर भगवान की स्तुति करते हैं... इन्द्र दीक्षाकल्याणक मनाने के लिये आते हैं। एक ओर भरत का राज्याभिषेक तथा दूसरी और भगवान की दीक्षा—दोनों उत्सव हो रहे थे। दीक्षा की यात्रा में हजारों नर-नारी वन की ओर जा रहे थे। अयोध्या के उन भोले लोगों को तो पता भी नहीं था कि भगवान कहाँ जा रहे हैं और क्यों जा रहे हैं? वे तो ऐसा मानते थे कि—भगवान किसी उत्तम कार्य के लिये जा रहे हैं और वह कार्य करके कुछ ही दिन में लौट आयेंगे। भगवान ने तो वन में जाकर वस्त्र उतारे और दीक्षा ग्रहण की... इस चौबीसी में वह दीक्षा का पहला प्रसंग था; ऋषभदेव ही सर्वप्रथम मुनि थे... अहा! आज भरतक्षेत्र में साक्षात् मोक्षमार्ग खुल गया। भगवान ने जन्मतिथि के दिन ही दीक्षा धारण की। धन्य है उस मुनिदशा को। नदी के किनारे दीक्षावन का वातावरण भगवान के सच्चे दीक्षाकल्याणक की प्रतीति कराता था.. पास में ही सरयू नदी जैसी नदी बह रही थी और उसी

के किनारे वटवृक्ष था। हजारों नेत्र आतुरता से भगवान को निहार रहे थे... नदी मानों भगवान के विरह में कलरव कर रही थी; वायु तीव्र गति से बहती हुई मानों मधुर स्वर में भगवान का गुणगान कर रही थी... वटवृक्ष प्रसन्नता से डोलता हुआ मानों कह रहा था कि—अहा, मुझे तीन लोक के नाथ पर छाया करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उस वन में विराजमान ऋषभमुनिराज को देखकर तीसरी काल का स्मरण होता था।

वन के वैराग्यमय वातावरण में पूज्य स्वामीजी ने अपने प्रवचन में मानों अमृत की धारा प्रवाहित की थी... मुनिदशा की अपार महिमा का वर्णन करते हुए उस दशा की भावना भायी थी। सब नर-नारी मुग्ध होकर सुन रहे थे। इसप्रकार मुनिराज की भक्ति करते हुए सब आदिनाथ नगर में लौटे। (भगवान का जन्म तथा दीक्षा दोनों का दिवस चैत्र कृष्णा ९ के हैं।) सायंकाल मुनिराज की खूब भक्ति हुई... रात्रि को भगवान आदिनाथ के दस पूर्वभवों का दृश्य वर्णन सहित दिखाया गया था।

चैत्रकृष्णाप्रतिपदाके प्रातःकालदेव-गुरुकीपूजाहुई।वनकेवातावरणमें विराजमान आदिनाथ मुनिराज की सामूहिक पूजा का दृश्य भावपूर्ण था। प्रवचन के पश्चात् रत्नत्रयधारी ऋषभमुनिराज हस्तिनापुर नगरी में पधारे और श्रेयांस राजा ने उन्हें इक्षुरस का आहारदान दिया। श्रेयांस राजा बनने का सद्भाग्य श्री सोमचंद पूनमचंद को प्राप्त हुआ था। आहारदान का वह प्रसंग अद्भुत था। श्रेयांस राजा का आदिनाथ भगवान के साथ दस भव का संबंध था और भगवान को देखते ही उन्हें जातिस्मरणज्ञान होता है आदि रोमांचकारी प्रसंग मानों दृष्टि के समक्ष तैरते थे। आहारदान के पश्चात् सारे नगर में जय-जयकार एवं पुष्पवृष्टि हो रही थी। आहारदान के पश्चात् चारों ओर इक्षुरस से बनी हुई मिश्री बाँटी जा रही थी। मुनिराज आदिनाथ के समक्ष भक्तों ने जो उमंगभरी भक्ति की, उसे देखकर अनेक लोग कहते थे कि अहा, कैसी अद्भुत मुनिभक्ति है!

दोपहर को जिनबिम्बों पर अंकन्यास-विधि हुई थी। और फिर भगवान के केवलज्ञान का दृश्य तथा समवसरण की रचना हुई थी। इन्द्रों ने केवलज्ञान की पूजा की और फिर पूज्य स्वामीजी का भगवान की दिव्यध्वनि के साररूप भाववाही आध्यात्मिक-प्रवचन हुआ था।

चैत्र कृष्णा दूज के प्रातःकाल निर्वाणकल्याणक-महोत्सव हुआ। कैलास पर्वत पर भगवान ऋषभदेव के दर्शन किये... कैलासपर्वत की रचना दर्शनीय थी।—इसप्रकार

निर्वाणकल्याणक के साथ ही जैनदर्शन का उद्योत करनेवाला पंच कल्याणक महामहोत्सव आनंदपूर्वक समाप्त हुआ....। रणासण धन्य हुआ और धन्य हुए वहाँ के मुमुक्षु! प्रतिष्ठा के पश्चात् प्रतिष्ठित जिनबिम्बों का गाजेबाजे के साथ नूतन जिनालय में विराजमान करने के लिये ले जाया गया और सबेरे साढ़े आठ बजे पूज्य स्वामीजी के शुभहस्त से जिनेन्द्र भगवंतों की वेदी-प्रतिष्ठा हुई। मूलनायक आदिनाथ भगवान को सेठ श्री छोटालाल वीरचंद तथा श्री सोमचंद पूनमचंद शाह ने विराजमान किया। आदिनाथ भगवान के आसपास महावीर भगवान और शीतलनाथ भगवान को विराजमान किया गया। पुराने जिनमंदिर में जो प्रतिमाएँ थीं, उन्हें भी नूतन जिनमंदिर में बगल की वेदी पर विराजमान किया गया तथा जिनवाणी की स्थापना हुई। पश्चात् मंदिर के तीनों शिखरों पर कलश एवं ध्वजारोहण हुआ और जैनधर्म के जय-जयकार से गगन गूँज उठा।

आज भगवान के दर्शन करने और जिनेन्द्रदेव की भव्य रथयात्रा देखने के लिये चारों ओर के ग्रामों से हजारों लोग उमड़ पड़े थे। पैदल, बैलगाड़ियों में और ट्रैक्टर भर-भरकर लोग रणासण आ रहे थे... बम्बई के भूलेश्वर की भीड़ को भुला दे, इतनी अपार भीड़ एकत्रित हुई।

जिनमंदिर के निर्माण एवं उत्सव में करीब पाँच लाख का खर्च और उससे अधिक की आय हुई थी।

इंदौर से सेठ श्री राजकुमारसिंहजी, श्री गुलाबचंदजी टोंग्या, श्री सेठ देवकुमारजी तथा श्री रतनलालजी सेठी और बम्बई के माननीय श्री नवनीतलाल जवेरी आदि महानुभाव भी इस अवसर पर रणासण पधारे थे। मक्सीजी में एक नूतन दिगम्बर जिनमंदिर का निर्माण हुआ है, उसमें विराजमान करने के लिये श्री पार्श्वनाथ भगवान की साढ़े चार फीट ऊँची प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा रणासण में हुई है। उन प्रतिमाजी की वेदी-प्रतिष्ठा का उत्सव ज्येष्ठ कृष्णा ७ के दिन मक्सीजी में होना है। उस अवसर पर पूज्य स्वामीजी से मक्सीजी पधारने की प्रार्थना आगन्तुक महानुभावों ने की, जिसे पूज्य स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया है और तद्नुसार पूज्य स्वामीजी तारीख५ म ईक ोब म्बईस ेह वाईज हाजद्व ाराइ ंदौरह ोकरद ेि दनके ि लयेम क्सीजी पधारेंगे।—ऐसा कार्यक्रम निश्चित हुआ है।

दोपहर को प्रवचन के बाद एक विशाल रथयात्रा निकली... नगर में घूमती हुई वह रथयात्रा दर्शकों को हर्षविभोर कर रही थी। पूज्य स्वामीजी द्वारा जैनधर्म का ऐसा प्रभाव देखकर श्री पंडित बंसीधरजी तथा श्री पंडित कैलाशचंद्रजी ने हार्दिक प्रसन्नता वयक्त की थी। दो हजार की बस्तीवाले ग्राम में उत्सव की पूर्णाहुति के दिन लगभग बीस हजार दर्शनार्थी आये होंगे! मकानों की छतें और छज्जे स्त्री-बच्चों से खचाखच भर गये थे और और अनेक ग्रामीण अपने बच्चों को कंधों पर बिठाये रथयात्रा दिखा रहे थे। करीब पंद्रह हजार लोगों ने उस दिन प्रतिष्ठा के प्रसादरूप लड्डू खाये होंगे।

चैत्र कृष्णा तृतीया के प्रातःकाल गुरुदेव ने जिनमंदिर जाकर जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये और भक्ति गायी... इसप्रकार रणासण में महान मंगलकारी पंच कल्याणक महोत्सव समाप्त कर पूज्य स्वामीजी ने हिम्मतनगर की ओर प्रस्थान किया।

श्री जिनेन्द्र पंच कल्याणक-महोत्सव की जय हो!

** ** **

हिम्मतनगर में स्वाध्याय-मंदिर का उद्घाटन

रणासण में पंच कल्याण पूर्ण करके फाल्गुन शुक्ला तृतीया के दिन पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी हिम्मतनगर पधारे और लोगों ने हर्षोल्लासपूर्वक स्वागत किया। दो वर्ष पूर्व हिम्मतनगर में पंच कल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी। गुरुदेव ने जिनमंदिर में जाकर जिनेन्द्र भगवान के दर्शन किये और पश्चात् उनके सुहस्त से स्वस्तिक विधानपूर्वक इंदौर के सेठ श्री राजकुमारसिंहजी के हस्त से नूतन स्वाध्यायमंदिर का उद्घाटन हुआ। पूज्य स्वामीजी ने मंगलाचरण करते हुए कहा कि—आत्मा का उपयोग ऐसे अप्रतिहतस्वभाव वाला है कि किसी से उसका घात नहीं हो सकता... जो उपयोग अन्तरस्वभावोन्मुख हुआ, वह कभी विमुख नहीं होता; आत्मा का जो रंग लगा, उसमें भंग पड़े बिना केवलज्ञान प्राप्त करे, ऐसा आत्मा का 'अलिंगग्रहण' स्वभाव है और वह मंगलरूप है। आत्मा का रंग लगा, अब बीच में राग का रंग नहीं लगने देंगे; आत्मा के रंग में भंग नहीं पड़ेगा—ऐसी तीर्थंकरों के कुल की टेक है। फिर गुरुदेव ने भावसहित कहा कि—अनंत तीर्थंकर हुए, उनके कुल के तथा उनकी जाबत के हम हैं... आत्मा के ऐसे स्वभाव की साधना के लिये जागृत हुए, उसमें अब भंग नहीं पड़ेगा... ऐसी हमारी तीर्थंकरों के कुल की टेक है।—इसप्रकार गुरुदेव ने अत्यंत भाववाही मंगल प्रवचन किया। साक्षात् भगवान से भेंट करके भरतक्षेत्र में आये हुए गुरुदेव के श्रीमुख से उल्लासपूर्ण मंगल-प्रवचन सुनकर श्रोताजन आनंद से झूल उठते थे और जय-जयकार से स्वाध्यायमंदिर गूँज उठता था। तत्पश्चात् स्वाध्यायमंदिर में कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि के चित्रों का उद्घाटन सेठ श्री राजकुमारसिंहजी तथा माननीय श्री नवनीतलाल जवेरी आदि के हाथों से हुआ था।

हिम्मतनगर दो दिन रहकर पूज्य गुरुदेव नरसिंहपुरा-जहर ग्राम पधारे थे। छोटा-सा गाँव होने पर भी वहाँ लोगों में खूब उत्साह था। पश्चात् दो दिन फतेपुर और एक दिन अहमदाबाद होकर चैत्र कृष्णा १० के दिन गुरुदेव सोनगढ़ पधारे और वहाँ के सुप्त वातावरण में पुनः जागृति आ गई। खाँसी के कारण गुरुदेव को कुछ दिन आराम की जरूरत थी, इसलिये बीच में बरवाला तथा सावरकुंडला, कानातलाब ग्रामों का कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा। सोनगढ़ के शांत वातावरण में आते ही गुरुदेव का स्वास्थ्य एकदम सुधरने लगा और १० दिन में बिल्कुल ठीक हो गया। इसलिये आगे का विहार निश्चित कार्यक्रम में साधारण फेरफार के साथ प्रारंभ हुआ और पूज्य गुरुदेव तारीख २३-३-६९ के प्रातःकाल राजकोट पधारे। राजकोट

में ९ दिन तक प्रात:-मध्याह्न-सायंकाल पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी का प्रवाह बहता रहा और हजारों धर्म-पिपासुओं की तृषा शांत हुई। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी श्री महावीर जयंती भी राजकोट में मनायी और तारीख १-४-६९ के प्रात:काल वहाँ से सुरेन्द्रनगर की ओर प्रस्थान किया। सुरेन्द्रनगर में पूज्य गुरुदेव का हार्दिक उल्लासपूर्वक स्वागत किया गया। वहाँ (तारीख १/२-४-६९) दो दिन रुककर एक दिन अहमदाबाद होते हुए तारीख ४ के प्रात:काल पालेज पधारे और वहाँ गुरुदेव का भावभीना स्वागत हुआ। पालेज में तारीख ४-४-६९ से ७-४-६९ तक ४ दिन रहकर सूरत की ओर विहार किया। सूरत में दो दिन तारीख ८-९ अप्रैल रहकर थाना (बम्बई) की ओर प्रयाण किया। पूज्य गुरुदेव जहाँ जाते हैं, वहाँ के वातावरण में धार्मिक जागृति आ जाती है और लोग हृदय से गुरुदेव का स्वागत करते हैं। थाना होते हुए गुरुदेव तारीख १२-४-६९ के प्रात:काल बम्बई नगरी में पधार रहे हैं, जहाँ उनका विस्तृत कार्यक्रम है—वैशाख शुक्ला २ से १८ अप्रैल को पूज्य गुरुदेव का ८०वाँ जन्म-दिवस रत्नचिन्तामणि महोत्सव के रूप में उल्लासपूर्वक मनाने की तैयारियाँ जोरों से चल रही हैं। तदुपरांत मलाड तथा घाटकोपर में निर्मित नूतन दिगम्बर जिनमंदिरों के पंच कल्याणकों का विशाल आयोजन है, जिसके लिये आजाद मैदान (धोबी तलाब) पर विशेष व्यवस्था की गई है। पंच कल्याणक महोत्सव वैशाख शुक्ला २ तारीख १८-४-६९ से वैशाख शुक्ला ७ तारीख २३-४-६९ तक मनाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेव तारीख ५-५-६९ तक बम्बई में विराजमान रहेंगे। तारीख ५-५-६९ के सायंकाल विमान द्वारा इंदौर पधारेंगे और तारीख ६ को इंदौर में रहकर तारीख ७-५-६९ को प्रात:काल मक्सीजी जायेंगे। वहाँ तारीख ७-८ दो दिन रहेंगे। तारीख ८ (ज्येष्ठ कृष्णा-७) को वहाँ नूतन दिगम्बर जिनमंदिर में श्री पार्श्वनाथ भगवान की वेदी-प्रतिष्ठा होगी। इन प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा रणासण में पूज्य गुरुदेव के सुहस्त से अंकन्यासपूर्वक हुई है।

मक्सी से इंदौर होते हुए तारीख ९ को विमान द्वारा गुरुदेव बम्बई पधारेंगे और तारीख १०-५-६९ के प्रात:काल बम्बई से विमान द्वारा प्रस्तान करके भावनगर होते हुए सोनगढ़ पधारेंगे।

सोनगढ़ में

धार्मिक अध्ययन की योजना

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ८०वाँ जन्मोत्सव बम्बई में रत्नचिन्तामणि-महोत्सव के रूप में आगामी वैशाख शुक्ला द्वितीया को हर्षोल्लास सहित मनाया जा रहा है। जिसके उपलक्ष में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने धार्मिक अध्ययन की एक योजना बनायी है—जिसकी रूपरेखा निम्न प्रकार है:—

(१) जैनधर्म में रुचि रखनेवाले कोई भी त्यागी अथवा सुयोग्य विद्वान सोनगढ़ में रहकर धार्मिक अध्ययन करें। पूज्य आत्मज्ञ संत श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का प्रतिदिन श्रवण करते हुए यहाँ चलनेवाले शिक्षणशिविर में रुचिपूर्वक अभ्यास करें और जो विषय अभ्यासक्रम में रखे जायें उनमें निपुणता प्राप्त करें।

(२) इसप्रकार जो विद्वान या त्यागी नियमितरूप से दो महीने तक उपस्थित रह सकते हों, उनके लिये यहाँ निवासस्थान एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था कर दी जायेगी। तदुपरांत जिन्हें आने-जाने के लिये मार्ग-व्यय की आवश्यकता मालूम होगी, उन्हें वह भी दिया जायेगा।

(३) शास्त्राभ्यास में निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें धर्मप्रचारार्थ बाहर भेजा जायेगा। वहाँ वे, पूज्य स्वामीजी जिन जैनसिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं तदनुसार उपदेश जैन जनता को दें, शिक्षणशिविर खोलें और उनमें विद्यार्थियों एवं प्रौढ़ों को धार्मिक अभ्यास करायें।

(४) जो गृहस्थ विद्वान प्रचार कार्य हेतु जायेंगे उन्हें योग्यतानुसार वेतन भी दिया जायेगा।

(५) अनुकूल समय पर ऐसे शिक्षणशिविर यहाँ सोनगढ़ में खोले जायेंगे और वे कम से कम दो महीने तक चलेंगे। इसप्रकार वर्ष में तीन बार शिविरों का आयोजन किया जायेगा। फिलहाल दो वर्ष के लिये यह योजना बनायी जा रही है। ऐसा पहला शिक्षणशिविर संभवत: मई महीने में प्रारंभ हो जायेगा।

(६) जो सज्जन उपरोक्त योजना का लाभ उठाना चाहें वे अपनी शिक्षा (धार्मिक तथा लौकिक), उम्र, वर्तमान कार्य आदि का संपूर्ण विवरण देतु हुए निम्नोक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।—जिन्हें पसंद किया जायेगा उन्हें उचित समय पर सूचना दी जायेगी और तब उन्हें यहाँ आना होगा।

नवनीतलाल सी. जवेरी
प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सोनगढ़
तारीख ४-१-६८

—: विज्ञप्ति :—

श्री समयसारजी शास्त्र (हिन्दी) की तृतीय आवृत्ति प्रकाशित करने की माँग अनेक जिज्ञासुओं की ओर से आ रही है। मुमुक्षुओं से निवेदन है कि—जिन्हें जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो, उसकी सूचना अपने नाम-पते सहित भिजवा देवें। पर्याप्त संख्या में आर्डर आ जाने पर छपाई की व्यवस्था की जायेगी।

पता:—
दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

भेद-विकल्प से रहित अभेद ज्ञानमात्र आत्मा की प्रतीति सो

भेदज्ञान है

[श्री समयसार कलश २५२ पर पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]
[राजकोट, तारीख २९-३-६९]

यह समयसार का २५२ वाँ कलश चल रहा है। इसमें कहा है कि—भगवान आत्मा इन शरीर, वाणी, मन, पुण्य-पाप के विकल्पों से दूर त्रिकाल एकरूप भिन्न तत्त्व है। यह तो ठीक है, परंतु जिसे आत्मा की एकरूप अभेददृष्टि करना है, उसे आत्मा में गुण-गुणी का भेद करना, उसे भी यहाँ परद्रव्य कहा जाता है। भगवान आत्मा अनंत गुणों का पिण्ड, उसकी अवस्था में भेदरूप विकल्प उठाना, उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। स्वरूप से अस्ति तथा पररूप से नास्ति की सूक्ष्म व्याख्या करते हुए कहा कि—भगवान आत्मा नित्य एकरूप है, ऐसा देखना वह स्वद्रव्य है, उसकी दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होते हैं।

भगवान आत्मा अनेक गुणों का एकरूप पिण्ड; उसमें गुणभेद का विचार करना, उसे परद्रव्य—अर्थात् परद्रव्य में स्थिति, पर्यायबुद्धि, भेदबुद्धि, अंशबुद्धि कहा जाता है; अंतर में भेदबुद्धि छोड़कर अखण्ड एकरूप निर्विकल्प आत्मा की दृष्टि करने से निर्मल भेदज्ञान होता है।

कहा है कि:—

'हम तो कबहुँ न निजघर आये,
पर घर फिरत बहुत दिन बीते
नाम अनेक धराये
हम तो.....

भगवान आत्मा का स्वक्षेत्र वह है, जिसमें अनंत ज्ञान-आनंदादि गुण विद्यमान हैं। ऐसा आधारमात्र वस्तु का प्रदेश, उसमें भेदकल्पना करना कि—यह भाग यहाँ है, यह यहाँ है, उसे परक्षेत्र कहा है। वह स्वक्षेत्र में नहीं है।

भाई, अनादिकालीन सत्य बात कभी सुनी नहीं, इसलिये वह अनजानी मालूम होती

है। अनंत ज्ञान-आनंदादि से परिपूर्ण निर्विकल्प एकरूपदशा, वह आत्मा का स्वभाव है; और त्रैकालिक वस्तु में भेद करके उसकी एक समयमात्र की अवस्था पर दृष्टि डालना, सो परकाल है।

अपना नित्यस्थायीपना, उसे स्वकाल कहते हैं और उसमें एक समय की दशा पर दृष्टि देना, सो परकाल है। त्रिकाली एकरूप स्वभाव की अस्ति में उस परकाल की नास्ति है।

भाई, तेरे निजघर में क्या है और क्या नहीं है, उसे समझना पड़ेगा। स्वरूप से अस्ति और पररूप से नास्ति, ऐसा अनेकांतस्वरूप है।

भगवान आत्मा ज्ञानानंद एकरूप सहज स्वभावी है, उसमें एक-एक समय की अवस्था पर दृष्टि देना, उसे भी परभाव कहकर एकरूप स्वभाव में उसकी नास्ति बतलायी है।

भगवान कहते हैं कि भाई, संयोगों पर या पुण्य-पाप पर दृष्टि रहे, वह तो मिथ्यादृष्टि है, इस अखंड एकरूप आत्मा में भेद-विकल्प करके उस पर दृष्टि रहना, वह भी मिथ्यादृष्टि—पर्यायदृष्टि है।

जिसप्रकार किसी के हाथ में पाँच के बाद जो छट्ठी उँगली निकलती है, वह रखने के लिये नहीं परंतु काट देने के लिये है, उसीप्रकार शुभ-अशुभ की जो वृत्तियाँ उठती हैं, वे निकाल देने के लिये हैं—रखने के लिये नहीं। जैसे आम्रफल में गुठली, रस, रेसे आदि के विभाग हैं, ऐसे आत्मा में नहीं हैं।

जिसप्रकार मिश्री की डली श्वेत मिठासयुक्त है, वह मिश्री है, परंतु अलग-अलग गुणों पर दृष्टि डालना, सो भेददृष्टि है; उसीप्रकार एक अखंड अतीन्द्रिय अनंत गुणसंपन्न आत्मा में भेद करके भिन्न-भिन्न गुणों पर दृष्टि देना, सो भेददृष्टि है—परभाव है, ऐसा यहाँ कहा है। शरीर-मन-वाणी तो परभाव हैं, उनकी आत्मा में नास्ति है, परंतु आत्मा में जो पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, उनकी भी आत्मस्वभाव में नास्ति है—आत्मा में अभाव है। स्वभाव की एकता में परभाव का अभाव है। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव स्व-रूप—एकरूप है, परंतु उसे लक्ष में लेने से जो विकल्प उठते हैं, उन पर दृष्टि न रखकर एकरूप पूर्ण आत्मा पर दृष्टि डालने से आत्मसाक्षात्कार-सम्यग्दर्शन होता है।

जिसप्रकार हाथी घास और लड्डूओं को एक करके खाता है, उसीप्रकार यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि—हे पशु समान, पर्यायबुद्धि एकांतवादी!—(एक-अंत अर्थात्

एकरूप अखण्ड आत्मा में भेददृष्टि रखनेवाला, सो एकांती है) तू अपने जीवस्वरूप की साधना नहीं कर सकता; क्योंकि भेदरूप दशा त्रैकालिक वस्तु में नहीं है—ऐसी अभेददृष्टि नहीं कर सकता, इसलिये तुझे आत्मसाक्षात्कार नहीं होगा। पर्यायदृष्टि के कारण तू तत्त्वज्ञान से शून्य है—भ्रष्ट है। किस कारण से भ्रष्ट है ? क्योंकि निर्विकल्प अभेद एक स्ववस्तु (—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अभेद वस्तु) का अवलोकन नहीं करता।—उसकी प्रतीति नहीं करता। भाई, भेद, भेद में है परंतु अभेद में भेद नहीं है। इसे जो स्वीकार नहीं करता, वह एकांतवादी मिथ्यादृष्टि है।

ज्ञान की एक समय की वर्तमान दशा में जगत के छह द्रव्य ज्ञात होते हैं, उस ज्ञान जितना ही मैं हूँ—ऐसा जो अपने को मानता है, वह ठगाया जाता है; उसे एकांतवादी-मिथ्यादृष्टि-मूढ़दृष्टि कहा है। ऐसी मान्यता अनादिकाल से विद्यमान है। ज्ञानी क्या मानते हैं, सो आगे कहेंगे।

जैनदर्शन-शिक्षणशिविर

सोनगढ़ में प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी जैन विद्यार्थी बन्धुओं के लिये धार्मिक-शिक्षणशिविर खोला जा रहा है, जो ज्येष्ठ कृष्णा १०, रविवार तारीख ११-५-६९ से प्रारंभ होकर ज्येष्ठ शुक्ला १४ तारीख ३०-५-६९ तक बीस दिन पूज्य श्री कानजीस्वामी की छत्रछाया में चलेगा। जो विद्यार्थी बन्धु इस शिक्षणशिविर में सम्मिलित होना चाहें वे पत्र द्वारा सूचित करें।

पता—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

लेखांक ४९] [अंक २८७ से आगे

भगवान श्री पूज्यपादस्वामीरचित 'समाधिशतक' पर पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मभावना भरपूर वैराग्यप्रेरक प्रवचनों का सार।

[आत्मधर्म के अनेक पाठों की ओर से सरल लेखों की माँग होने से १२५ महीने पहले अंक नं १५० से प्रारंभ की गई, यह सरल लेखलामा अब पूर्ण के निकट आ रही है। 'समाधिशतक' के कर्ता श्री पूज्यपादस्वामी छठवीं शताब्दी में हो गये हैं, जो महान दिगंबर जैनाचार्य मुनिराज थे। आपका एक दूसरा नाम 'देवनंदि' था; आप भी विदेहक्षेत्र में भगवान श्री सीमंधर भगवान के पास गये थे—ऐसा उल्लेख शिलालेखों में है। तत्त्वार्थसूत्र शास्त्र के ऊपर 'सर्वार्थसिद्धि' १८००० श्लोक प्रमाण महान टीका, तथा 'जिनेन्द्रव्याकरण' आदि महान ग्रंथों की रचना आपने की है। उनकी अगाधबुद्धि के कारण मुनियों ने उन्हें 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहा है।—ऐसे आचार्यकृत 'समाधिशतक' पर यह प्रवचन आप दस वर्ष से पढ़ रहे हैं। (सं.-हरि)]

व्रत और अव्रत दोनों का त्याग करने से क्या लाभ होता है?—ऐसा पूछने पर आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्धोपयोग द्वारा उन दोनों के त्याग से आत्मा को परमप्रिय हितकारी इष्ट सुंदर परमपद की प्राप्ति होती है—

यदन्त-र्जल्प-संपृक्त-मुत्प्रेक्षा-जाल-मात्मनः।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम्॥८५॥

अंतर में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्परूप जो कल्पनाओं का जाल है, वही आत्मा को दुःख का मूल है; चैतन्यस्वरूप में एकाग्रता द्वारा उसका नाश करने से अपने प्रिय हितकारी ऐसे परमपद की प्राप्ति होती है—ऐसा जिनदेव ने कहा है।

संतक हतेह ैं ि क—'निर्विकल्पर सप ीजिये....'अ र्थात्अ पनेि चदानंदमयप रम अतीन्द्रियस्वरूप का निर्विकल्प वेदन करना वही आनंद है और उस स्वरूप से बाहर निकलकर जितने संकल्प-विकल्प हैं, वे दुःख का कारण हैं।

अंतर्मुख होकर जो निर्विकल्प होता है, वही परमपद को पाता है। जो जीव, चैतन्यस्वरूप से च्युत होकर संकल्प-विकल्प का अंगीकार करता है, वह परमपद को प्राप्त नहीं करता।

संकल्प-विकल्परूप जितने राग हैं, वे सभी संसार-दुःख का ही कारण हैं। राग से आत्मा को लाभ मानना वह तो विष की छुरी लेकर अपने पेट में घुसाकर लाभ मानने जैसी मूर्खता ही है। आत्मा का चिदानंदस्वभाव आनंद का मूल है, उससे बाहर निकलने से शुभाशुभ विकल्प उत्पन्न होते हैं, वह सभी भाव राग-द्वेषमय होने से आकुलताजनक हैं, संसार-दुःख का ही कारण हैं। उनसे छूटकर चिदानंदतत्त्व में लीन होने से ही परम आनंद का अनुभव होता है।

अहो! कैसा सुंदर मार्ग है!! परम वीतरागी शांति का मार्ग है; अरे! सर्वज्ञ के ऐसे वीतरागी शांतमार्ग को अज्ञानीजन संयोग में एकताबुद्धिवश विपरीत मान रहे हैं। ज्ञानी धर्मात्मा जानते हैं कि अहो! चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होकर परम वीतरागी आनंद का वेदन करना वही एक हमें परम इष्ट है, वही हमें प्रिय है; इसके सिवा राग की वृत्ति उत्पन्न हो, वह तो दुःखदाता है; वह हमें इष्ट नहीं, प्रिय नहीं। हम तो राग की वृत्ति छोड़कर चैतन्य में ही लीन रहना चाहते हैं।

[वीर संवत् २४८२, श्रावण शुक्ला-३]

यह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप एवं आनंदस्वरूप है; संकल्प-विकल्पों का जाल उठता है, वह आकुलता है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं है, वह तो दुःख का मूल है। चैतन्यस्वरूप से बाहर निकलने से पराश्रयभाव अर्थात् बाह्यविषयों के जो कुछ संकल्प-विकल्प होते हैं, वे सब अहितकर हैं, दुःखकर है। उन संकल्प-विकल्प का नाश करके चैतन्यस्वरूप में लीनता करने से ही इष्ट ऐसे परमपद प्राप्त होती है।—ऐसा भगवान ने कहा है। अव्रत या व्रत की वृत्ति उत्पन्न हो, वह इष्ट नहीं है, न उससे इष्टपद की प्राप्ति है, स्वोन्मुखता द्वारा निर्विकल्प आनंद का वेदन हो वही आत्मा को इष्ट है।

भगवान आत्मा इन्द्रियों से पार अतीन्द्रिय है, विकल्पों से पार निर्विकल्पस्वरूप है, चिदानंदमय है; ऐसे अपने आत्मा को भूलकर बाह्य विषयों की ओर झुकने से जो संकल्प-विकल्प होते हैं, उनमें ही अज्ञानी फँसे रहते हैं; किंतु यहाँ एक बात विशेष कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के पश्चात् ज्ञानी को चारित्रदोष से अस्थिरता से जो व्रतादि विकल्प उत्पन्न होते हैं, वे भी आकुलतारूप हैं, बंध और दुःख का कारण हैं। भले ही वह प्रगटरूप बाह्य विषयों में न वर्तता हो, किंतु अंतर में जो संकल्प-विकल्प की तरंगें उठती हैं, वे भी दुःखरूप हैं। संकल्प-विकल्प सर्वथा छूटने के पूर्व इस बात का निर्णय करना चाहिये। अहो! शांति और आनंद तो मेरे आत्मानुभव में ही हैं, शुभ या अशुभ संकल्प-विकल्प में शांति नहीं है। साधकदशा में व्रत-तप के विकल्प तो आते हैं किंतु उन्हें छोड़कर स्वरूप में लीन होने से ही मुझे अपने पूर्णानंद की प्राप्ति होगी—ऐसा जिसने निर्णय नहीं किया, वह विकल्पों से लाभ मानता है; वह तो अज्ञानी है। इष्टपद क्या है? सुखी होने का उपाय क्या है? उसकी भी उसे खबर नहीं है। उसने तो राग को ही इष्ट मान रखा है। ज्ञानी तो अपने चैतन्यपद को ही इष्ट समझते हैं और स्वालंबन का पुरुषार्थ बढ़ाकर अव्रत तथा व्रत—दोनों को छोड़कर चिदानंदस्वरूप में लीनता द्वारा परम इष्ट पद को प्राप्त करते हैं। जब तक संकल्प-विकल्प में फँसा रहे तब तक जीव को परम सुखमय इष्ट पद की प्राप्ति नहीं होती; जब विकल्पों के समस्त जाल को छोड़कर स्वयं अपने चैतन्यचमत्काररूप विज्ञानघन आत्मा में लीन होता है, तभी अनंत सुखमय परम पद की प्राप्ति होती है ॥८५॥

जिसे चैतन्यस्वरूप आत्मा की प्रतीति है और जो समस्त संकल्प-विकल्पों के जाल का नाश करने को उद्यमी है—ऐसा जीव किस क्रम से उसका नाश करता है, वह बतलाते हैं—

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्॥८६॥

अव्रती तत्त्वज्ञानी जीव प्रथम व्रत को ग्रहण करके अव्रत संबंधी विकल्पों का नाश करे और पश्चात् विशेषरूप से ज्ञान-परायण होकर अर्थात् ज्ञान में लीन होकर व्रत संबंधी विकल्पों का भी नाश करे। इसप्रकार ज्ञानभावना में लीनता के द्वारा वह जीव परात्मज्ञानसम्पन्न—उत्कृष्ट आत्मज्ञानसम्पन्न अर्थात् केवलज्ञानसम्पन्न परमात्मा होता है।

सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन तो हुआ है, उसके बाद की यह बात है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं है, उसे तो अव्रत का भी त्याग नहीं होता और न अंशमात्र समाधि होती है।

मैं विकल्पों से पार ज्ञानानंदस्वरूप हूँ, ऐसा जिसको सम्यक् प्रतीति है, वह किसमें एकाग्र होकर संकल्प-विकल्पों को छोड़ेगा ? चैतन्यस्वरूप में जितनी एकाग्रता होती है, उतनी ही समाधि होती है। देखो, केवली भगवान को परिपूर्ण अनंत सुखरूप समाधि ही है। मुनिदशा में जो व्रतादि का विकल्प उत्पन्न होते हैं, उतने अंश में उन्हें भी असमाधि है, सम्यग्दृष्टि को अव्रतों का विकल्प उत्पन्न होता है उसमें विशेष असमाधि है; और मिथ्यादृष्टि को तो घोर असमाधि है। जितनी असमाधि उतना दुःख है। केवली भगवंतों को परिपूर्ण अनंत सुख है; बारहवें आदि नीचे के गुणस्थानों में उनसे कम सुख है। मुनियों को जितना संज्वलन कषाय है, उतना भी दुःख है और जितनी ज्ञान में सावधानी है, उतना सुख है। सम्यग्दृष्टि को चतुर्थ गुणस्थान में अव्रत के विकल्प होने पर निर्मल श्रद्धा निरंतर है, अतः श्रद्धा अपेक्षा तो वह ज्ञानपरायण ही है। विकल्परायण नहीं है। किसी भी प्रकार का राग हो उससे लाभ नहीं मानता।

प्रथम अव्रत का त्याग करके व्रती होने को कहा, वहाँ कोई ऐसा माने कि हमें सम्यग्दर्शन भले ही न हो, किंतु प्रथम अव्रत को छोड़कर व्रत अंगीकार कर लेना चाहिये, पश्चात् सम्यग्दर्शन होना होगा तो हो जावेगा!—तो वह बड़ी भारी मूढ़ता है, उसे जैनशासन की परिपाटी का पता ही नहीं है। सम्यग्दर्शन बिना कभी व्रत नहीं होते और अव्रत मिटते नहीं हैं। सम्यग्दर्शन द्वारा मिथ्यात्व का त्याग प्रथम होता है, और पश्चात् अव्रत छूटते हैं; किंतु जिसे मिथ्यात्व नहीं छूटा, उसे अव्रत का त्याग हो ही नहीं सकता। जिसको सम्यग्दर्शन नहीं है, वह तो बहिरात्मा है। यहाँ तो वह बहिरात्मपना छोड़कर जो अंतरात्मा हुए हैं—सम्यग्दृष्टि हुए हैं, उस अंतरात्मा में से परमात्मा होने की बात है। अंतरात्मा होने के पश्चात् ज्ञानानंदस्वरूप में लीन होने पर ही परमात्मदशा होती है। प्रथम ही जिन्होंने मिथ्यात्व को तो छोड़ा है और ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा की प्रतीति की है—ऐसे सम्यक्त्वी प्रथम अव्रत को छोड़कर और पश्चात् व्रत को भी छोड़कर, अपने चिदानंदस्वरूप में निर्विकल्परूप से लीन होकर केवलज्ञान प्रगट करके परमात्मा होते हैं और सिद्धपद को प्राप्त करते हैं।

—इसप्रकार ज्ञानभावना ही मोक्ष का कारण है, व्रतादि के विकल्प, मोक्ष का कारण नहीं हैं ॥८६॥

जिसप्रकार व्रतादि के विकल्प मोक्ष का कारण नहीं हैं, उसीप्रकार मुनिलिंग का विकल्प भी मोक्ष का कारण नहीं है—ऐसा अब आचार्यदेव कहेंगे।

आत्मधर्म के ग्राहकों से.....

[अपना वार्षिक चंदा भेजकर व्यवस्था में सहयोग दीजिये]

प्रिय महानुभाव!

(१) आपका वार्षिक चंदा आगामी चैत्र मास में पूरा हो रहा है। कृपया, नये वर्ष का चंदा ३) तीन रुपये मनीऑर्डर से भिजवा दें ताकि नये वर्ष का अंक आपको समय पर मिल सके।

(२) यदि आप चाहें तो अपना चंदा अपने यहाँ के मुमुक्षु मंडल द्वारा भी भिजवा सकते हैं। (जिन-जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल हैं, वे अपने नगर के ग्राहकों का चंदा एकत्रित करके ड्राफ्ट द्वारा भिजवायें तो व्यवस्था में विशेष सुविधा रहेगी।)

(३) अपना पूरा नाम और पता जिला-तहसील के साथ स्पष्ट अक्षरों में लिखें। जिससे आपका अंक नियत समय पर मिलता रहे।

(४) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती; परंतु जो ग्राहक वी.पी. से अंक मंगवाना चाहते हों वे हमें पत्र द्वारा सूचित करेंगे तो वी.पी. से अंक भेजा जायेगा।

(५) एकबार में सिर्फ एक ही वर्ष का चंदा लिया जाता है। इसलिये संवत् २०२५-२६ के एक वर्ष का ही चंदा ३) तीन रुपये भेजिये।

(६) आप अपने मित्रों या स्नेहियों को आत्मधर्म का ग्राहक बनाना चाहते हों तो उनका पूरा पता हमें भेजिये... हम उन्हें नमूने की एक प्रति बिना मूल्य भिजवा देंगे।

आशा है आपका सहयोग हमें प्राप्त होगा।

पता :—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	,, ,, ,, भाग-२	१.००
	,, ,, ,, भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला	०.५०
२२	वीतरागविज्ञान पाठमाला	०.६५
२३	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२४	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२५	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००
२६	वीतराग विज्ञान पाठमाला (भाग-३)	

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :
मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)